(आदिवासी दर्पण)

अनुष्ठान प्रिय मुकलोम जनजाति

चावाङ ताङहा

अरुणाचल प्रदेश क्षेत्रफल की दृष्टि से पूर्वोत्तर का सबसे बड़ा राज्य है। यहाँ अलग-अलग नामों से कई जनजातीय समुदाय रहते हैं। मुकलोम इन्हीं जनजातियों में से एक है, जिसकी सामाजिक व्यवस्था और सांस्कृतिक पहचान बेजोड़ है। ताङसा जनजाति की यह एक उप जनजाति है। अरुणाचल प्रदेश की अन्य जनजातीय समुदाय की भाँति मुकलोम जनजाति भी वनों, पहाड़ों, नदियों एवं घाटियों के बीच बसे बस्तियों में रहती हैं। उनका जीवन प्राकृतिक है यानी वे प्रकृतिजीवी आस्था एवं लोक-विश्वास के हैं। मुकलोम जनजाति के बारे में अरुणाचल प्रदेश की ही दूसरी जनजातियाँ कम जानती हैं। ऐसे में पूर्वोत्तर और देश के अन्य हिस्सों के लोग लगभग अपरिचित होंगे। संचार-साधनों की बढ़ती अधिकता, पहुँच और प्रभाव के बीच अजनबीयत की यह बात सही नहीं लगती है, लेकिन सचाई यही है कि मुकलोम जनजाति के बारे में जानकारी बहुत कम है या है भी तो आधी-अधूरी।

मुकलोम जनजाति इतिहास

मुकलोम अरुणाचल प्रदेश के मूल निवासी हैं। अरुणाचल प्रदेश के चांगलांग जिले के चाङलाङ, मियाओं, खरसङ और उसके आस-पास और खिमयाङ सर्कल (वृत्त) में रहने वाले ताङसा लोगों का यह एक उप समूह है। वे मूल रूप से पूर्वी भारत के पूर्व दिशा में स्थित मूकलूम नाम के एक पर्वत के आस-पास रहते थे। इस पर्वत से निकटता के कारण ही मुकलोम जनजाति नाम पड़ा। परंपरागत रूप से अन्य सभी आदिवासियों की तरह मुकलोम आदिवासियों ने कभी भी किसी नए धर्म को नहीं अपनाया। वे केवल प्रकृति के प्रति पूर्ण समर्पित बने रहे। वे मूल रूप से मूकलूम नाम के एक पर्वत के आस-पास रहते थे। इसी पर्वत से मुकलोम जनजाति का नाम पड़ा। परंपरागत रूप से मुकलोम जनजाति ने कभी भी किसी अन्य धर्म का अनुसरण नहीं किया। वे केवल प्रकृति के आधार पर जीवने जीने में विश्वास करते आये हैं और खुद को 'प्रकृतिजीवी' (एनिमिस्ट) मानते हैं। जल, जंगल, पशु-पक्षी, मानव-जगत आदि से उनका साहचर्यपूर्ण जीवन एवं संगति है। वह प्रकृति के परम सत्ता यानी निराकार देवता 'खटकरांग'/'रंग-कथक' की स्तुति और उनका आह्वान करते हैं। मुकलोमों ने पारंपरिक रूप से किसी भी संप्रदाय विशेष द्वारा स्थापित ईश्वर की पूजा नहीं की और न ही किसी ईश्वर के लिए निर्दिष्ट किसी भवन या मंदिर जैसी संरचना का निर्माण किया। उन्होंने यह जरूर किया कि अपने जनजातीय बोध और गरिमा के लिए जंगल, जानवरों, मानव जैसे विभिन्न आत्माओं के साथ साहचर्य और सह-अस्तित्व का संबंध बनाया और अपने जनजातीय इतिहास को सुरक्षित रखा। इन सबके अलावा उन्होंने एक ऐसी दिव्य-सत्ता की परिकल्पना की जिनकी उपस्थिति और निराकार सहयोग से वे अपनी स्मृतियों को दिव्य और दैवीय बनाये रखें। सहज मानवीयता की इसी आकांक्षा में उन्होंने खटकरांग/रंग-कथक देवता को अपनाने हेतु प्रवृत्त किया।

मुकलोम जनजाति का इतिहास इस समाज के पुराने विधि-विधान अथवा अनुष्ठान को देखकर महसूस किया जा सकता है। मुकलोम जनजाति के समाज में नवजात बच्चे के जन्म के बाद अनुष्ठान करने की परंपरा

है। इसी तरह सयाने हुए लड़के-लड़कियों के विवाह संबंधी अनुष्ठान की बारी आती है। प्रकृतिजीवी आदिवासी कृषि कार्य का अनुष्ठान पूर्ण मनोयोग और अभ्यासपूर्वक करते हैं। इसी तरह वे नया घर बनाने के लिए अनुष्ठान करते हैं। त्योहारों एवं विशेष अवसरों पर अनुष्ठान आदि आयोजित करते हैं। यहाँ तक कि मृत्यु के समय में किया जाने वाला अनुष्ठान भी पूर्ण निष्ठा एवं लोक आस्था के साथ किया जाता है। उनका अनुष्ठान केवल पूजा-पाठ तक सीमित नहीं है। वह इसी बहाने अपनी स्मृतियों को ताजा करते हैं। पुरखों को याद करते हैं। वह उन आत्माओं को स्मरण करते हुए तृप्त करने का प्रयास करते हैं जिनका अनुभूत एवं आविष्कृत सत्य उन तक पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होकर पहुँचा है।

मुकलोम समाज आशावादी है। इस समुदाय ने नकारात्मकता को नकारते हुए परस्पर सकारात्मकता सिरजने का कार्य हमेशा किया है। मुकलोम समाज में आर्थिक परिस्थिति कैसी है और उनके जीवन-निवाह या फिर आजीविका का मुख्य साधन क्या है, यह जानना भी जरूरी है। मुकलोम जनजाति की मातृ-भाषा एवं मातृ-बोली के बारे में जानना तो और भी रोचक है, क्योंकि इस जनजाति की भाषा जानने वाले कम लोग बचे हैं और नए लोग आधुनिकता के प्रभाव में अपनी भाषा और संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। मुकलोम जनजाति के पूर्वजों का मानना था कि 'मनुष्य जाति में जनजातियों का जन्म दो भाई-बहन के संबंध से हुआ था। जब दोनों भाई-बहन बिना मां-बाप के दु:खद काल में रह रहे थे, तो उसी वर्ष जब मनुष्य का अंत काल आने वाला था; उसके कुछ दिनों पूर्व एक असहाय, जीर्ण अवस्था, वस्त्रहीन केवल कुछ पतले चादर लपेटे और एक कान में धान और दूसरे कान में रेशमी कीड़ा लगाए कोई संत पूरे नगर/गाँव का परिभ्रमण कर रहे थे। लेकिन कोई उन्हें अपने घर में प्रवेश नहीं दे रहा था। उस गाँव के आखिर में इसी भाई-बहन का घर था। संत ने विनीत भाव से वहां जाकर पूछा कि 'बच्चों, क्या तुम दोनों के घर के अंदर मैं आ सकता हूँ?' दोनों भाई-बहन ने कहा 'जी बिल्कुल बाबा, हमारे घर में आने की कोई पाबंदी नहीं है। आप हमारे घर के भीतर प्रवेश कर सकते हैं।' इसी बात से वे बूढ़े बाबा खुश हुए और वे घर के अंदर प्रवेश कर गए और कहा कि मेरे सामने गलीचा बिछाओ। उस बूढ़े बाबा की बात सुनकर दोनों ने गलीचे बिछाए। उसी गलीचे में बूढ़े बाबा ने एक कान से धान का बीज और दूसरे कान से रेशमी कीड़ा दिया और साथ में एक चिड़िया भी दी जिसको मुकलोम में 'वोखिंग' कहते हैं। बूढ़े बाबा ने कहा कि-''एक समय ऐसा आएगा जब पापी मनुष्य का अंतकाल आएगा। एक भूकंप के रूप में जोरदार झटका लगेगा। उसी समय जब ये चिड़िया कूं करेगी तभी तुम दोनों एक बड़ी गहरी गुफा खोदना और दूसरी बार कूं करने पर धान और रेशमी कीड़े के साथ अंदर चले जाना। तीसरी बार कूं करेगी तभी तुम दोनों उस गुफा से बाहर निकलना। ये कह कर वे बूढ़े बाबा वहां से चले गए।

एक समय आया जब वह चिड़िया कूं करने लगी। दोनों भाई-बहन ने जैसे उस बूढ़े बाबा ने कहा था वैसे ही किया और दोनों गुफा के अंदर सुरक्षित पहुँच गए। दुनिया में भूकंप आया और सारी मनुष्य जाति उस भूकंप में काल का ग्रास हो गया। जब चौथी बार चिड़िया कूं करने लगी तो वे दोनों उस गुफा से बाहर आए और विनाश से बचने का संकेत देने के लिए उस बूढ़े बाबा को देवता 'खटकरांग/रंगकथक' नाम से धन्यवाद देने लगे। उसी रंगकथक का दिए धान के बीज और रेशमी कीड़ा को जमीन में बोकर उन्होंने खेती-बारी का कार्य आरंभ किया। उन्हीं दो भाई-बहन के संबंध से मनुष्य जाति का जन्म हुआ और वे अपने को आज भी उन्हीं दो भाई-बहन के बच्चे मानते हैं। जब सारे बच्चे बड़े हो गए तो उन दोनों ने सभी बच्चे को मरे जानवर के चमड़े

और बांस के पत्तों के ऊपर यह लिखकर दिया कि सब अपने-अपने जनजाति व परिवार को आगे बढ़ाएँ और इस दुनिया के अलग-अलग क्षेत्रों में निवास करें। यह कहानी पूर्वजों से चली आ रही है कि 'मनुष्य जाति का जन्म दो भाई-बहन के संबंध से हुआ था। जब दोनों भाई-बहन बिना मां-बाप के दु:खदकाल में रहे रहे थे तो उसी वर्ष जब मनुष्य का अंतकाल आने वाला था, उसके कुछ दिनों पूर्व एक असहाय, अवस्था वस्त्रहीन केवल कुछ पतले चादर लपेटे और एक कान में धान और दूसरे कान में रेशमी का कीड़ा लगाए पूरे नगर/गाँव में प्रवेश करने की अनुमति मांगे घूम रहे थे परंतु उस अनजान आदमी बूढ़ा को किसी ने भी अपने घर के अंदर प्रवेश करने से मना कर दिया। उस गाँव में आखिरी घर उस भाई-बहन का था, उन्होंने वहां जाकर पूछा कि 'क्या तुम दोनों के घर के अंदर प्रवेश कर सकता हूं बच्चों?' दोनों ने कहा' जी बिल्कुल बाबा, हमारे घर में कोई पाबंदी नहीं है। आप हमारे घर के भीतर प्रवेश कर सकते हो' इसी बात से वे बूढ़े बाबा खुश हुए और वे घर के अंदर प्रवेश करने लगे और कहा कि मेरे सामने गलीचा बिछाओ। उस बूढ़े बाबा की बात सुनकर दोनों ने गलीचे बिछाए। उसी गलीचे में बूढ़े बाबा ने एक कान से धान के बीज और दूसरे कान से रेशमी कीड़ा दिया और साथ में एक चिड़िया भी दी जिसको मुकलोम में ' वोखिंग' कहते हैं, और कहा कि एक समय ऐसा आएगा मनुष्य के पापों का अंतकाल आएगा। एक भूकंप के समय जब ये चिड़िया कूं करेगी तभी उसी समय एक बड़ी गहरी गुफा खोदना और दूसरी बार कूं करने पर धान और रेशमी कीड़े के साथ अंदर चले जाना। तीसरी बार कूं करेगी तभी तुम दोनों उस गुफा से बाहर निकलना। ये कह कर वे बूढ़े बाबा वहां से चले गए। जैसे ही चिड़िया कूं करने लगे तो उस बूढ़े बाबा ने जैसा कहा था उन दोनों ने वैसे ही किया और दोनों गुफा के अंदर सुरक्षित पहुंच गए। दुनिया में भूकंप आया और सारी मनुष्य जाति उस भूकंप में लुप्त हो गई। जब चौथी बार चिड़िया कूं करने लगी तो वे दोनों उस गुफा से बाहर आए और विनाश से बचने का संकेत देने के लिए उस बूढ़े बाबा को देवता 'खटकरांग रंगकथक' नाम से धन्यवाद देने लगा और उसी रंगकथक द्वारा दिए गए धान के बीज और रेशमी कीड़ा को जमीन पर फेंककर खेती-बारी का कार्य प्रारंभ हुआ। उन्हीं दो भाई-बहन के संबंध में मनुष्य जाति को जन्माने का यश पूरी दुनिया में विख्यात है।

मुकलोम आदिवासी समय के साथ अपनी तादाद में बढ़ने लगे थे। ऐसे में इस समुदाय ने दूसरी जगह स्थान बदलने के लिए यात्रा शुरू कर दी। यात्रा में बच्चे पहाड़ों और जंगलों को पार करते-करते भूख-प्यास से सूखे जा रहे थे। आदिवासी समुदाय जो मैदानी इलाकों की ओर बढ़ गए, वे गैर-आदिवासी कहलाये। मैदानी भाग में गए इस समुदाय ने बांस के पत्ते पर ज्ञान लिख लिया था जो आखिर तक उनके साथ बना रहा। उन लोगों ने वैसे ही ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया जैसा कि उनके मां-बाप ने उनसे कहा था। यह समुदाय ज्ञानी और शिक्षित होता गया और गैर-आदिवासी कहलाया। दूसरी ओर आदिवासी समुदाय ने पहाड़ों के बीच ही अपने रहवास की जगह बना ली। इस दौरान जिस-जिस के पास मांस के चमड़े में ज्ञान और बौद्धिक विचार लिखकर भेजा गया था, वे लोग अपनी भूख-प्यास मिटाने के लिए मांस के चमड़े को खाकर आगे बढ़ते गए। इस तरह यह समुदाय ज्ञान एवं शिक्षा के मामले में पीछे रह गया। यात्रा में आगे बढ़ते इन आदिवासियों के समूह से कुछ लोग भारत के पूर्व दिशा में चले गए और मुकलोम पर्वत में रहने लगे। मुकलोम पहाड़ पर बसे लोग मुकलोम कहलाए।

मुकलोम जनजाति रंगकथक को आज 'रांगफ्रा' धर्म के नाम से जानता है। मुकलोम समाज में इसे रांगफ्रा नामक मूर्तिपूजक देवता के आकार अथवा रूप-रंग में हिंदू धर्म के समान जाना जाता है। आज ये 'स्वदेशी

धर्म' के अंतर्गत आते हैं। कुछ मुकलोंमों ने अब दिव्य आत्माओं को खुश करने की अपनी पारंपरिक प्रथा को बंद कर इसाई धर्म अपना लिया है। अब यह समुदाय पारंपरिक अनुष्ठान के प्रति आग्रही नहीं रह गया है। आज कुछ मुकलोम लोगों के सोच-विचार ऐसे बन गए हैं जिसको केवल धर्म ही दिखता है। अब भाईचारा कम हो रहा रहा है या उनमें आपसी विश्वास कम होने लगा है। अब पहले की तरह सामूहिक एकता अथवा एकजुटता नहीं दिखाई पड़ती है जो बेहद चिंता की बात है। मुकलोम जनजाति की बोली एक है जिसे ताङसा समुदाय आसानी से समझने लग गए हैं। आज के युग में मुकलोम बोली को गैर आदिवासी जनजातियाँ भी आसानी से समझने लग गई हैं।

मुकलोम जनजाति में अनुष्ठान

मुकलोम जनजाति का समाज पारंपरिक रूप से समृद्ध है। समुदाय के लोग पूर्वजों के समय से ही विभिन्न अनुष्ठानों का नियमबद्ध ढंग से पालन करते आ रहे हैं। यह उनकी संस्कृति का हिस्सा है। नवजात बच्चे के जन्म से लेकर मृत्युकाल तक मुकलोम समुदाय अलग-अलग पद्धतियों में अगाध विश्वास करता आया है। मुकलोम समाज में यह अनुष्ठान परंपरागत पूर्वजों के समय से चली आ रही है जब भी किसी के घर नवजात बच्चे का जन्म होता है तो शिशु का स्वागत धूमधाम से किया जाता है और पूरे रीति-रिवाज के साथ विधिवत अनुष्ठान संपन्न किया जाता है। इस अवसर पर देवताओं को धन्यवाद दिया जाता है। नवजात बच्चे के जन्म के ठीक तीन दिन बाद इस शिशु को नया नाम दिया जाता है। बच्चे को नाम देते समय घर के मर्द नदी मछली पकड़ने जाते हैं और औरतें बच्चे सहित घर में ही उनकी वापसी की प्रतीक्षा करती हैं। जैसे ही मर्द नदी से मछली पकड़ कर लाते हैं- उसी समय से घर के औरतों का कार्य शुरू हो जाता है। वे सभी बच्चे और माँ को बिठाकर थाली में धान के कुछ छिलके पानी सहित रख देते हैं और घर वालों द्वारा सुझाए गए नामों को बोलते हैं। यह रिवाज़ तब तक चलता है जब तक धान के छिलके गोल-गोल चक्कर काटकर आपस में मिल नहीं जाते। इस रिवाज़ के लिए नवजात शिशु के माँ बाप, नाना नानी, दादा दादी का होना और भी शुभ माना जाता है। साथ गाँव वालों को भी आमंत्रित किया जाता है। ख़ासकर गाँव के बड़े बुजुर्गों को। इसके अलावा और जितने भी लोग इस अनुष्ठान में शामिल होते हैं वे नवजात शिशु को आशीर्वाद सहित कुछ रुपए देकर स्वागत करते हैं।

शादी संबंधी अनुष्ठान की पद्धति

पूर्वजों के समय में लड़का-लड़की एक-दूसरे को पसंद करके शादी नहीं करते थे। उस समय आपसी सहमति से शादी तय कर दी जाती थी यानी कि लड़के के माँ-बाप लड़की के माँ-बाप आपस में ही तीसरे आदमी के साथ मिलकर यह संबंध जोड़ देते थे। इसे मुकलोम समुदाय 'मुकलोम कामवा' कहा जाता है। यह परंपरा पूर्वजों से चली आ रही है। परंतु इस युग में लड़का-लड़की की पसंद, ना-पसंद और राय को प्राथमिकता दी जाने लगी है। इसके बाद ही शादी के रस्मों की शुरुआत होती है। पूर्वजों के समय का ही नियम अनुष्ठान मुकलोम जनजाति अपनी शादियों में अपनाते चले आ रहे हैं। सबसे पहले तीसरे आदमी यानी कि कामवा लड़के के घर वाले और लड़की के घर वाले के यहाँ जाकर रजामंदी द्वारा आपस के रीति-रिवाज अनुसार शादी की तारीख पक्की कर देते हैं। मुकलोम रीति-रिवाज के अनुसार लड़के वाले लड़की वालों को दो मिथुन, एक सुअर और लड़की के रिश्तेदारों को कुछ रुपये नियम के अनुसार सौंपते हैं। शादी के समय सब रिश्तेदारों को अपने संबंध के अनुसार विभिन्न रस्मों और अपनी भूमिका को निभाना पड़ता है। जैसे बड़े भइया, बड़ी दीदी, बुआ, चाचा-

चाचा, मामा-मामी को यह रस्म निभाना अनिवार्य माना जाता है। ऐसा होने के बाद ही शादी संपन्न होती है। शादी के बाद भी शादी के घर में जितने भी काम में हाथ बंटाने आते हैं, उन्हें रिवाज के अनुसार बांस के डिब्बे में दारु भर करके और मांस के टुकड़े को हरी पत्तियों में बांधकर उन सभी के घरों में भेजा जाता है। तभी ही शादी के अनुष्ठान को पूर्ण रुप से संपन्न माना जाता है।

कृषि-कार्य से संबंधित अनुष्ठान और कार्य-कलाप

आदिवासी समुदाय में कृषि कार्य की शुरुआत प्रायः फ़रवरी महीने में करते हैं। मुकलोम जनजाति पूर्वजों से ही परंपरा कृषि कार्य करने की विधि अपनाई चली आ रही है। खेती से संबंधित अनुष्ठान विशेष ढंग से प्रयोजन अनुसार संपन्न होता है। मुकलोम समुदाय में कृषि कार्य तीन प्रकार के तथा तीन बार होते हैं- पहली 'हिमी पिग' (बाजरा की खेती) यह खेती कार्य दिसंबर से लेकर जुलाई महीने तक होते हैं। दूसरी, 'खांगपिग' (स्थानांतरित खेती) जिससे संबंधित खेती कार्य की शुरुआत फ़रवरी से लेकर नवंबर महीने तक होती है और तीसरी, 'नालटोंग पिग' (पानी खेती) जिसकी शुरुआत जून से लेकर दिसंबर महीने तक होती है। परंतु तीनों ही कृषि कार्य के अनुष्ठान एक हैं। सबसे पहले खेत की तैयारी करने की बारी आती है, जिससे पूर्व उस स्थान पर बड़े बुजुर्ग हाथ में चावल जिससे हमारे मुकलोम में "वोंगखी" कहते हैं और साथ में एक प्रकार की वनस्पति जो जंगलों में ही पाई जाती है जिसे 'मनरूँग बंग' कहते हैं, दोनों प्रकार की सामग्री को लेकर वोंगखी (चावल) को हरी पत्ती में रखकर और मनरूँग बंग (जंगली वनस्पति) को खेत काटने वाले स्थान पर चुनवा देते हैं और (रोमरांग) रीति-रिवाज़ के अनुसार बड़े बुजुर्ग जंगलों के अदृश्य रखवाले से विनती करते हैं कि आज से इस स्थान पर हम अपने पेट के लिए तथा जीवनयापन के लिए खेती करेंगे। इस खेत में जितने भी प्रकार के व्यंजन उगेंगे वह निरोग एवं सुरक्षित हों। खेती की शुरुआत पेड़-पौधों की कटाई से होती है और कटे हुए तमाम पेड़-पौधों को आग से जलाया जाता है। तत्पश्चात बीज बोते हैं। बाजरे के बीज जनवरी महीने में, स्थानांतरित खेती में बीज मई महीने में और पानी खेती में बीज जुलाई महीने में बोते हैं। यह कार्य सबसे व्यस्त, उत्साह और उमंग से भरा हुआ होता हैं। इस अवसर पर गाँव वालों का आपसी भाईचारा देखने को मिलता है। लोग एक दूसरे के खेतों में हाथ बटाते हैं और एक उत्सव की तरह कार्य मिल-जुलकर निपटाते हैं। फसलों की कटाई से पूर्व मुकलोम समुदाय में एक और प्रमुख अनुष्ठान होता है जिसे 'हारोंग' कहते हैं। यह अनुष्ठान बाजरे और धान के फसलों के स्वागत हेतु धरती मां को पूजते हैं क्योंकि नाना प्रकार के फसलों की अच्छी उपजाऊ धरती मां की ही देन है। यह अनुष्ठान परंपरागत अनुसार बड़े बुजुर्ग द्वारा रीति-रिवाजों के साथ संपन्न होता है। इस अनुष्ठान को गाँव वाले एक त्यौहार की तरह ही जश्न के रूप में मनाते हैं। इस अनुष्ठान के लिए गाँव वाले लोगों की संख्या के अनुसार मिथुन, सूअर और मुर्गी-मुर्गा साथ ही दारू पहले से इंतजाम करके रखते हैं। हारोंग के दिन गाँव की सभी औरतें सवेरे सूर्य उदय होने से पहले अपने-अपने खेतों में जाकर लाल पके हुए बाजरे और धान की पत्तियों को लेने जाती हैं और गाँव के बूढ़े–बच्चे और जवान हारोंग स्थल में पहुंचते हैं और रोमरांग के लिए मिट्टी का ढेर बनाकर रखते हैं और मिथुन को लकड़ी की नोक में फँसाकर रिवाजों के साथ प्रार्थना करते हैं। जैसे ही स्त्रियाँ बाजरे और धान की पत्तियां ले आती हैं, गाँव के बड़े बुजुर्ग जिसे 'रोमवा' कहते हैं- वे चावल (वोंगखी), बांस में दारू (खमती)- पानी और माँस सहित मिट्टी के ढेर में रख देती हैं और साथ ही जंगली वनस्पति 'मनलूम बंग' को उसके पास ही चढ़वा देती हैं और गाँव के 'तमवा' (पुजारी) द्वारा गाँव वालों की अच्छे फसलों तथा स्वास्थ्य

की कामना करते हैं, तत्पश्चात सभी गाँव वाले खाना, मांस और दारू-पानी का खान-पान करते हैं। आखिर में गाँव के रोमवा (पुजारी) द्वारा एक बार फिर से रीति-रिवाजों के अनुसार हारोंग अनुष्ठान को संपन्न करने हेतु प्रार्थना करके ही घर लौटते हैं। उसके बाद सभी घर लौटकर मुर्गी की बलि देकर बाजरे और धान की पत्तियों को घर के बड़े स्तंभ में बांध देती हैं। इसके साथ ही अपने पूर्वजों और पूजनीय को धन्यवाद तथा मातृभूमि को धन्यवाद देते हुए मुकलोम जनजाति के सारे लोग अपने पारंपरिक अनुष्ठान को पूर्ण श्रद्धा के साथ संपन्न करते हैं।

नया घर बनाने संबंधी अनुष्ठान पद्धतियाँ

मुकलोम समाज में घर बनाने का कार्य मिलजुल कर होता है। यह कार्य लोगों को मदद का मौका देता है जिससे आपसी एकता को बल मिलता है। पुराने पड़ चुके घर जिसे तोड़कर नये निर्माण की आवश्यकता है, उसे तोड़ने से एक दिन पहले गाँव के सारे लोग पुराने घर पर इकट्ठे होकर स्थानीय दारु का सेवन करते हैं जिसे मुकलोम समाज में 'हिमपोंग' कहते हैं। दूसरे दिन घर को तोड़ा जाता है और सारे गाँव के लोग मिलकर नया घर का निर्माण करते हैं। नया घर बनाने के पश्चात सारे गाँव के लोगों को इकट्ठा किया जाता है और माँस-दारू खिलाया-पिलाया जाता है। बूढ़े-बुजुर्ग इसमें रीति-रिवाज के अनुसार सारे अनुष्ठान को संपन्न कराते हैं, लेकिन नए घर में सूर्यास्त से पहले ही प्रवेश करना अनिवार्य होता है और पूर्वजों के अनुसार ऐसा करना, पारंपरिक रूप से शुभ माना जाता है।

त्यौहार/पर्व की अनुष्ठान पद्धतियाँ

त्यौहार को मुकलोम समुदाय में 'मोह-मोल' कहते हैं। यह त्यौहार अप्रैल महीने में जोर-शोर से मनाया जाता है और 25 अप्रैल को चाङलाङ जिले में सारे आदिवासी जनजातियों के लिए विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है। इसमें हर ताङसा जनजाति की हरेक उप-जनजाति अपनी-अपनी संस्कृति की पहचान के साथ उपस्थित होते हैं। जैसे-मुकलोम, तुत्सा, लोङचाङ, हावी, जुगली आदि होते हैं। मुकलोम जनजाति में सांस्कृतिक वस्त्र-वेशभूषा, आभूषण, रंग-बिरंगे साज-सज्जा अत्यंत मनोहारी दृश्य प्रदर्शित करते हैं। पुरुषों का पहनावा अलग है। जैसे-सिर की टोपी को बांस के सूत से बनाया जाता है और उसमें चिड़ियों के पंखों को भी सजाया जाता है। गले के आभूषण के लिए बांस के सूत से बना गोले आकार की माला तैयार किया जाता है। दोनों हाथों-पैरों के लिए बांस के सूत से बनी चीज को पहनाया जाता है। बांस की टोपी को मुकलोम में 'खोपोङ' कहते हैं। पुरुष के वस्त्र साधारण होते हैं। ऊपरी हिस्से के शरीर में सफेद बनियान और नीचे के लिए नीला बनियान और साथ में पतली-सी चार डोरियों को बनियान के ऊपर बांधते हैं। उस चादर में नीले रंग के साथ लाल और सफेद रंग का मिश्रण भी दिखता है जिसे चादर के आखिरी हिस्से में मिलाया जाता है। पुरुषों की वेश-भूषा में सबसे अधिक सजावट होती है। इस त्यौहार के मौके पर सबसे महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय चीज ढोल होती है जिसे मुकलोम में 'नोङ' कहते हैं। इसे मांस के चमड़े से ही तैयार किया जाता है। कोने-कोने में बांस के सूत से इसे बांधा जाता है। इसे बजाने के लिए लकड़ी के डंडे का उपयोग किया जाता है।

मुकलोम समुदाय में स्त्रियों का त्यौहारी वस्त्र-आभूषण अत्यंत सुंदर और रंग-बिरंगा होता है। इनके ऊपरी हिस्से के वस्त्र सफेद रंग के होते हैं जिसे नीली ओढ़नी के साथ पहना जाता है। सफेद रंग के साथ लाल रंग के मेखला जिसको मुकलोम में 'खतसा' कहते हैं। साथ में गले में बांस के सूत से बना गोले आकार के और

साथ ही सिक्के से बने हुए व लाल रंग के अनेक प्रकार की मालाएँ पहनाई जाती हैं। हाथों-पैरों में भी बांस के बने कंगन और सूत को बांधते हैं और सिर पर बांस के सूत से बनी पट्टियों के साथ तीन लाठी जो लकड़ी का बना हुआ होता है, उस पर चिड़ियों के पंख और प्लास्टिक के बने रंग-बिरंगी पट्टियाँ सजी होती हैं।

'मोह मोल' त्यौहार पूरे चाङलाङ जिले में सप्ताह पर चलता है। मोह-मोल के समय में सांस्कृतिक प्रदर्शन के साथ-साथ गाना भी गाया जाता है। इसी गाने में मुकलोम जनजाति की कहानी, रीति-रिवाज को गाने के माध्यम से बयां किया जाता है। वाचिक परंपरा की इन भाषाओं में मुकलोम समाज की गहन एवं गूढ़ बातें समायी होती हैं। यह अफसोसजनक है कि आजकल की नई पीढ़ी इनको भली-भाँति नहीं समझ पाती है। क्योंकि मुकलोम जनजाति के गुणी और कला-संपन्न पूर्वजों की भाषा एवं बोलने के ढंग अलग ही थे। इसे मौखिक साहित्य में मुकलोम समुदाय ने बचाए रखने का हरसंभव प्रयास किया है, लेकिन अब पुरानी पीढ़ी की तरह नई पीढ़ी अपनी भाषा में रुचि नहीं ले रही है। यह संकट लगातार तेज होता जा रहा है जिसे मुकलोम समुदाय एक बड़े खतरे के रूप में देख रहा है। मुकलोम जनजाति में यह चिंता और निराशा का बड़ा कारण है जिसे यदि एक बार नष्ट हो जाने दिया गया तो इस समुदाय के पुरखों या पूर्वजों की बोली-वाणी को दोबारा उसी रूप में सिरज पाना असंभव होगा।

मृत्यु संबंधी अनुष्ठान पद्धतियाँ

मुकलोम जनजाति के पूर्वजों का मानना था कि मनुष्य मरने के बाद अपनी-अपनी जनजाति के पूर्वजों के पास पहुँच जाता है। यह मान्यता आज भी बरकरार है। मुकलोम समुदाय में इंसान का देह से प्राण त्यागते ही तीन बार बंदूक आसमान की ओर चलाता है जिससे गाँव वाले समझ जाते हैं कि किसी की मृत्यु हो गई है। मृत्यु के बाद तुरंत ही मृत शरीर को जंगली पौधे के पत्ते जिसे 'खोंमख़ी जग' कहते हैं, इस पत्ते को पानी में भिगोकर स्नान करवाते हैं और मृत शरीर को खल जिसे लकड़ी से बनाया जाता है और बीच में बांस की बनी कालीन को बिछाया जाता है। उस खल में मृत शरीर को उठाते समय भी तीन बार बंदूक चलाया जाता है। तत्पश्चात मृत शरीर को घर के बीचो-बीच खल के सहारे उठाकर लगभग दो रात और तीन दिनों तक रखा जाता है। इन दिनों में बीच-बीच में जैसे सवेरे, दिन, शाम और रात के समय भी बंदूक चलायी जाती है। उस मृत शरीर को खाना-पीना देते हैं और बांस की बनी टोकरी उसके सिरहाने पर रख देते हैं। इस दु:खद समय में केवल गाँव वाले ही नहीं बल्कि अन्य आस-पास के गाँव वाले भी साथ खड़े होते हैं। मुकलोम समाज में मृत शरीर को जलाया जाता है जबकि अन्य तंगसा उपजातियों में मृत शरीर को दफनाया जाता है। मृत शरीर को ले जाते समय घर के भीतर बने मिट्टी के चूल्हों को साफ़ करके उसके ऊपर बांस के बने बड़े आकार वाले टोकरी से ढँक देते हैं और घर के सभी सदस्य गाँव वालों सहित मृत शरीर को जलाने ले जाते हैं, ले जाते समय कोई भी सदस्य पीछे नहीं लौटता। मृत शरीर को जलाते समय मृतक के रिश्तेदार भाई-भैया द्वारा बांस में नाले का पानी उठाने का रिवाज होता है। दो लोग दो-दो बांस में बांस की टोकरी को पीठ से लाद कर तीन बार लाते हैं, उसके बाद घर के सदस्यों को बाएं हाथ से लकड़ी के टुकड़ों को अपने–अपने सिर के ऊपर घुमाकर जली हुई आग के पार फेंकने का रिवाज है। यह रिवाज इसलिए किया जाता है ताकि मृत व्यक्ति घर के लोगों को भूलकर अपनी जगह शांतिपूर्वक जा सके। यह कार्य पूर्ण होने के बाद घर के सदस्य वापस आ जाते हैं। वापस आते समय कोई भी पीछे मुड़कर नहीं देखता, क्योंकि पीछे मुड़कर देखना वर्जित है। घर आकर घर के चूल्हों में पैरों के निशान जाँचता है अगर चूल्हों

पर किसी के पैरों का निशान मिलता है तो यह अशुभ माना जाता है। दूसरी ओर, दाह संस्कार के बाद दो भाईयों द्वारा लाए गए उसी नाले के पानी से अग्नि को बुझाया जाता है। यही मृत शरीर के अंतिम संस्कार का मुख्य अनुष्ठान है।

पूर्वजों के समय में आपात दुर्घटना में हुई मौत होने की स्थिति में मृत शरीर को अनुष्ठान के साथ विदाई या उसका अंतिम संस्कार नहीं किया जाता था। उस मृत शरीर को उसी स्थान पर छोड़ देते थे या जला दिया जाता था। बिना अनुष्ठान किए एक जानवर की मृत्यु की भांति। इस मान्यता को आज की पीढ़ी उसी तरह से पूरे रीति-रिवाज एवं अनुष्ठान के साथ अंतिम संस्कार करके विदाई देती है जैसा सामान्य स्थिति में किया जाता है। इस तरह शुभ-मांगलिक अवसर पर अथवा शोक से संबंधित अनुष्ठान मुकलोम जनजाति की पहचान को बताते हैं। मुकलोम समुदाय अनुष्ठान अभ्यास से गहरे आस्था के साथ जुड़े हुए हैं। इस जन-समुदाय के लोगों का यह मानना है कि जब तक पारंपरिक अनुष्ठान-अभ्यास चलते रहेंगे, तब तक मुकलोम समाज की संस्कृति चलती रहेगी। वह यह भी मानते हैं कि जब यह अनुष्ठान समाप्त हो जाएंगे तब मुकलोम जनजाति के समाज की संस्कृति भी समाप्त हो जाएगी।

मुकलोम समाज की आर्थिक परिस्थितियाँ

मुकलोम समुदाय के पूर्वजों की आर्थिक परिस्थिति इतनी अच्छी नहीं थी। वे अपने जीवनयापन अथवा आजीविका के लिए वनों पर अधिक निर्भर थे। मुकलोम जनजाति के ऐतिहासिक कथा के अनुसार आदिवासी लोगों ने लिखित ज्ञान की बहुमूल्य निधि जो मांस के चमड़े के रूप में उन्हें दी गई थी, को अपनी भूख मिटाने के लिए खा लिया। शायद इसी कारण मुकलोम जनजाति में इतना अज्ञान, अंधविश्वास, अशिक्षा और गरीबी बढ़ गई थी जो आज तक भी मुकलोम जनजाति पुनः प्राप्त नहीं कर सकी है। आज भी उनके पास इतिहास का लिखित साहित्य नहीं है। आर्थिक परिस्थिति में मुकलोम अन्य जनजाति से काफी नीचे है। कारण कि पढ़े लिखे या बड़े अधिकारियों के होते हुए भी समाज में ज्ञान का कोई आदान-प्रदान पारस्परिक सहयोग-भावना से नहीं हो पा रहा है। मुकलोम जनजाति अधिसंख्य कृषि पर निर्भर है जो उनका पारंपरिक पेशा या कि जीने का आधार है। लेकिन यह भी सच है कि शिक्षा ने मुकलोम समुदाय के लोगों के जीवन में बदलाव लाना शुरू कर दिया है। आज बीस-तीस प्रतिशत लोग सरकारी नौकरी कर रहे हैं जिनके ऊपर अपने मुकलोम समुदाय की पहचान और संस्कृति को बनाए और बचाए रखने की सबसे अधिक जवाबदेही है।

मुकलोम जनजाति की मातृ-भाषा एवं बोली

मुकलोम जनजाति की मातृभाषा 'मोकलोम' भाषा ही है। इस की शुरुआत ऐतिहासिक रूप से प्रचलित मौखिक कथा के अनुसार प्रकृति प्रदत्त आध्यात्मिक शक्ति से हुई है। जिस प्रकार मुकलोम जनजाति का प्रारंभ दो भाई-बहन से हुआ था, उसके अंतर्गत मुकलोम जनजाति के लोगों ने जंगल-वनों में अपना निवास स्थापित करना शुरू कर दिया था। वे अपने निवास स्थान के आस-पास खेती कर गाँव का निर्माण कर रहे थे। इसलिए लोगों ने प्रकृति को अपना मुख्य देवता मानकर उसकी पूजा करना शुरु कर दिया। कथा के अनुसार मुकलोम जनजाति के लोगों के पास कोई मौखिक भाषा नहीं थी। लोग इशारों से आपस में वार्तालाप करते थे। धीरे-धीरे लोगों ने चीजों को नाम देना शुरू कर दिया और साथ ही पूर्वजों का यह भी कहना है कि जनजाति समाज के लोग प्रकृति की पूजा पूरे श्रद्धा से करते थे। इसलिए आध्यात्मिक रूप से लोगों को मुकलोम बोली की प्राप्ति हुई।

मुकलोम जनजाति की बोली एक है जिससे मुकलोम आपस में अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। मुकलोम में एक ही मातृभाषा एवं बोली होने के कारण लोग इसे आसानी से समझ लेते हैं और इसे बोला भी जा सकता है। कहा जाए तो मुकलोम बोली सहज और सरल है। इसमें कोई विशेष परिवर्तन करके अभ्यास नहीं करना पड़ता है। यह सीधे-सीधे बोलियों में बोला जाता है। यह अवश्य है कि केवल मौखिक बोली होने के कारण लोगों को बोलने में आसानी और सहजता होती है। मुकलोम जनजाति की एक ही बोली होने के कारण लोगों को बातचीत करने में स्वतंत्रता होती है और आसानी से एक-दूसरे की बातों को समझ भी जाते हैं। इस संदर्भ में एक उल्लेखनीय सचाई यह है कि आज तक मुकलोम जनजाति की कोई भी बात लिखित रूप में प्रकाश में नहीं आई है और न ही इनके साहित्य सार्वजनिक रूप से प्रकाश में आ सके हैं। आज के युग में इस दिशा में गहन तरीके से विचार-विमर्श की आवश्यकता है तथा मुकलोम समुदाय के साहित्य के दस्तावेजीकरण की दिशा में ठोस कदम, निर्णय और आपसी सहयोग अपेक्षित है। आधुनिक समय-समाज और बदली हुई परिस्थितियों के साथ मुकलोम समाज विकास की ओर बढ़ने का पूरा प्रयास कर रहा है और उनमें अपनी आर्थिक परिस्थितियों को भी मजबूत व सुदृढ़ करने का संकल्प दिखाई दे रहा है। यह उम्मीद की जानी चाहिए कि सांस्कृतिक विविधता एवं भाषाई बहुलता वाले देश के एक प्रमुख राज्य के रूप में अरुणाचल प्रदेश की गरिमा और ऐतिहासिक गौरव को आगे बढ़ाने एवं ऊपर उठाने में ताङसा जनजाति की उप-जनजाति के बतौर मुकलोम समुदाय का योगायोग सर्वाधिक होगा और इस समुदाय की अपनी पहचान और अस्मिता सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता भी बरकरार रह पाएगी।

*(**लेखकीय परिचय :** चावाङ ताङहा राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से परास्नातक हैं और वर्तमान में* आप अध्यापन कार्य कर रही हैं। *मोबा: 8119982652, ई-मेल : chawangtangha6272@gmail.com)*